International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

आधुनिकता के दौर में बदलती युवा मानसिकता और नैतिक मूल्यों का विघटन

मनीषा
शोधार्थी हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक
ई–मेल nishuhooda12@gmail.com

मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में होता है। युवावस्था एक ऐसी ही अवस्था है जिसमें व्यक्तित्व का विकास पूर्णता की सीमा लगभग प्राप्त करता है। मनुष्य जीवन में युवावस्था का अपना ही एक अलग महत्व होता है। उसके महत्व का उल्लेख करते हुए किसी ने उसे स्वर्णकाल कहा तो किसी ने उत्कर्ष काल और किसी ने बसंत काल की संज्ञा दी है। नये विचार और नया ज्ञान ग्रहण करने और उसे आत्मसात् करने के लिए इस आयु का मन अत्यधिक ग्राह्य होता है। यह अवस्था, आशा, अपेक्षा, उत्साह, उमंग तथा साहस का परिपूर्ण कोश होती है इसलिए संसार के महत्वपूर्ण कार्य प्रायः युवावस्था के ही नाम हैं। विशेष सोचनीय बात यह है कि हमारे देवी–देवताओं का स्वरूप भी युवावस्था का ही है। यही कारण है मनुष्य जीवन में युवावस्था को सर्वोत्तम काल माना जाता है। सुशील सिद्धार्थ के अनुसार – ''प्रत्येक नई पीढ़ी अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग और प्रतिक्रियाशील होती है।''[1]

आज के युवा आने वाले भविष्य के निर्माता हैं। राष्ट्र की सम्पति है, आधार स्तम्भ है। अतः युवा समाज के महत्वपूर्ण अंग होते हैं लेकिन आधुनिक युग में युवा समाज के चिंतनीय विषय बन गए हैं। सारे समाज का ध्यानाकर्षण युवा पीढ़ी हो गई है। युवा जीवन से सम्बन्धित अनेक पहलुओं का अध्ययन हुआ है और हो रहा है। परन्तु युवाओं की मानसिकता का अध्ययन व्यापक नहीं हो पाया है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा विश्लेषण से युवा मानसिकता का ज्ञान हो सकता है।

आज कॉरपोरेट और पूँजीवाद के कारण हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। साथ ही इसने जीवन को इतना जटिल बना दिया है कि नैतिकता आदर्श मूल्य व चरित्र आदि सब कुछ निरर्थक हो चुके हैं। रिश्ते मात्र बनावटी बन गए हैं। मनुष्य एकदम अकेला हो गया है। उसे अपनी जड़ों से कट जाने की पीड़ा अलग से सता रही है। उदारीकरण से विकसित इस भौतिक चकाचौंध ने जहाँ पारम्परिक एवं जड़ मूल्यों को खण्डित किया है वहीं कुछ नए नैतिक मूल्यों की सृजना भी की है। सबसे पहले अगर हम परिवार की बात करें तो हमारी परम्परा के अनुसार बड़े–बूढ़ों का आदर करना एवं उनकी परम्पराओं का पालन करना हमारा नैतिक दायित्व बनता है। चाहे ये परम्पराएँ विकृत ही क्यों न

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

हो, लेकिन आज की युवा पीढ़ी ऐसी किसी पारिवारिक परम्पराओं को नहीं मानती जिसके कारण उनका स्वतंत्र अस्तित्व खण्डित हो।

''श्रवण कुमार के देश में माता–पिता वृद्धावस्था में जिस स्थिति को भोग रहे हैं, वह भयावह है। बढ़ते औद्योगिक विकास और महानगरीय संस्कृति ने बड़ी तेजी से संयुक्त परिवार की प्रणाली की समाप्ति कर एकल परिवार संस्कृति स्थापित कर दी है। भूमंडलीयकरण के दौर ने मनुष्य के सम्मुख लालसाओं का ऐसा अम्बार लगा दिया कि धन का ही महत्व रह गया, रिश्ते–नातों की सीमा धीरे–धीरे नष्ट होती जा रही है। न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में वृद्धावस्था की समस्याएँ विकट रूप ले रही है। अपना पैसा और अचल सम्पति – घर मकान के अपने नाम होते हुए भी वृद्ध एक लाचारगी का जीवन जी रहे हैं। शारीरिक आवश्यकता उन्हें दूसरों का मुँह जोहने के लिए विवश करती है।''[2]

इसी क्रम में चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' उपन्यास है जिसमें दो वृद्धों बाबू जसवन्त सिंह तथा कर्नल स्वामी के माध्यम से वृद्धावस्था की त्रासद स्थितियाँ उकेरी गई हैं। उपन्यास में कर्नल स्वामी के साथ बेटे व बहू के द्वारा बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है। लेकिन वह फिर भी बाहर वालों को कुछ नहीं दिखाते हमेशा हँसते रहते हैं। यह सब वे अपने बेटे और बहू की सामाजिक प्रतिष्ठा बचाने के लिए करते हैं। कर्नल स्वामी इसी तरह अपने अन्तरंग मित्र बाबू जसवन्त सिंह से सदैव बहू की प्रंशसा करते हुए अपने 'सुखी पारिवारिक जीवन' का चित्र प्रस्तुत करते रहते हैं जबकि सत्य यह है कि उसकी बहू अपने नृत्य गुरू के साथ चली गई है। उनके तीन बेटे हैं जिनकी नजर उनके नोएडा वाले फ्लैट पर है। अन्तिम समय में श्रीनारायण ने उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। ''श्रीनारायण का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया। क्रुद्ध श्रीनारायण ने अपने पिता पर हाथ उठाया। कर्नल स्वामी के रोने–चीखने का आर्त स्वर सुनकर मिस्टर एंड मिसेज श्रीवास्तव का दिल दहल उठा। दरवाजा भड़भड़ाया। श्रीनारायण से उन्होंने दरवाजा खोल देने की चिरौरी की लेकिन श्रीनारायण ने भीतर से ही उनको आपसी मामले में दखल न देने की धमकी दी। घबराए श्रीवास्तव ने सौ न॰ डायल कर पुलिस सहायता बुला ली। पुलिस ने दरवाजा खुलवाया। लहूलुहान कर्नल स्वामी को 'कैलास अस्पताल' ले जाया गया। बोलने के काबिल होते ही उन्होंने बेटे के विरूद्ध एफ॰आई॰आर॰ दर्ज करने से मना कर दिया क्योंकि श्रीनारायण ने माफी मांगते हुए अप्पू के पांव जो पकड़ लिए।''[3]

इसमें लेखिका ने यह दिखाया है कि यह माता पिता का हृदय ही है जो सन्ताप की कितनी अनकरनी व अकहनी को सहते हुए भी उन्हें क्षमा कर देता है। बेटे अपने माता–पिता के साथ कितना बुरा व्यवहार करते हैं। हमारे माता–पिता जो कि पूजनीय हैं आज के युवा उन्हें पूजना तो दूर वह

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

सम्मान भी नहीं दे पाते हैं जिनके वे हकदार हैं। उन्हें मारा पीटा जाता है। गाली गलौच देते हैं जो कि हमारी सभ्यता की पहचान है।

समस्याओं के दायरे में चक्रवत परिवर्तन करने वाला आज का युवक आक्रोश और विद्रोह की तीव्रतम भावनाओं एवं क्रियाकलापों से भरपूर है। तोड़–फोड़, मारपीट उसकी प्रवृति बन गई है। पुरातन मान्यताओं, रूढ़ियों की परिधि में वह नहीं जीना चाहता, अपितु अपनी सम्पूर्ण शक्ति का समुचित प्रयोग करके उन्हें तोड़ने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह सब कुछ भंजन कर रहा है। मानवीय और समाजवादी धरातल पर, पुराने मूल्यों को, व्यवस्था को अनुशासन को जिससे वह खुद भी टूक–टूक हो जाता है। फिर भी आज का युवक युग की पुकार है। वह वैयक्तिक स्वतन्त्रता की स्थापना करने के लिए संकल्पशील है। नए मार्ग का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील है। जब तक नए मार्ग का निर्माण नहीं हो जाता वह इस कंकरीट पर चलने को ही बाध्य है। पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष शाश्वत ही है। यह संघर्ष चलता रहा है और चलता ही रहेगा। अन्तर है तो सिर्फ उसकी झगड़ा, कटुता और तीव्रता का। युवक और बुजुर्गों में हमेशा ही आकाश–पाताल का अन्तर रहा है और आगे भी रहेगा क्योंकि समाज विकसित होता है तो उनकी सोच भी विकसित होती है। ये दोनों ही नदी के किनारे के समान है जो आपस में कभी भी नहीं मिल सकते।

आज का युवक नए युग का प्रतिनिधि और संचालक है। युवा विद्रोह चेतना के सामने वह बौना नहीं है फिर भी उपलब्धि के लिए आज भी उसे नारे का ही सहारा लेना पड़ता है क्योंकि आज के युवा को प्राप्त होने वाली शिक्षा उसे ज्ञान देने वाली नहीं बल्कि लकीर का फकीर बनाने वाली है। उसे कार्यालय का लिपिक मात्र ही बनाती है। ज्ञान का संचार एवं नए मूल्यों का प्रतिस्थापन उनके लिए असमर्थ है। वैज्ञानिक और तकनीकी यान्त्रिकी शिक्षा प्राप्त करने वाला युवक भी जब बेकारी और बेरोजगारी से ग्रसित है तो उसके हृदय में युवा विद्रोह और आक्रोश का होना स्वाभाविक ही है।

आज के युग में प्राचीन नैतिक मान्यताएँ गल–सड़ गई हैं और आज के युवक के अन्दर पुराने सम्बन्धों के प्रति आस्था नहीं है। उसके अन्दर नैतिकता, प्रेम, संघर्ष की शक्ति, स्वाभिमान और मूल्यों की सृजनात्मक शक्ति बलवती है लेकिन आध्यात्मिकता, सामाजिक नैतिकता, सम्बन्धों का ह्रास, असफलता, अदम्य शक्ति उसके अन्दर संत्रास, कुण्ठा, घुटन, मृत्युबोध, अकेलापन, अजनबीपन व्याप्त है और उसी संकट और संघर्ष में प्रेमालाप करना पड़ रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए शिवानी द्वारा लिखित 'पूतों वाली' उपन्यास हर बूढ़े माता–पिता की दयनीय स्थिति को रेखांकित करता है। पाँच बेटों के माँ–बाप के लिए किसी भी बेटे के न तो घर में ही कोई स्थान रिक्त है न ही उनके मन में। अपने जीवन की खुशियों को कुर्बान करके उनकी आहुति चढ़ाकर जो माँ–बाप अपना पेट काट

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

कर घर की पूँजी और गहने बेचकर अपनी औलाद को इतने ऊँचे औहदों पर पहुँचाते हैं। वही औलाद विवाह बंधन में बंधकर उनके प्रति अपने सब कर्तव्यों को झुठला कर अपनी पारिवारिक खुशियों में रम जाते हैं। जब उनकी माँ के बीमार होने पर उन्हें पत्र भेजे जाते हैं तो उनका कोई जवाब नहीं आता। अपनी माँ की बीमारी के विषय में सुनकर भी उनका हृदय नहीं पसीजता। लेकिन जब वे बिना बताए अपने बेटे के पास चले जाते हैं तो उन्हें उनका ऐसे वहाँ आना भी अच्छा नहीं लगता। माँ ने बच्चों के बारे में पूछा तो ऐसे लगा जैसे कोई अपराध कर रही हो। ज्यादा कुछ बहू बेटा और माता–पिता में संवाद नहीं होता। यह आधुनिक शिष्टाचार की चरम सीमा है। लेखिका कहती है –

परदे की आड़ से छुटके ने जो कहा वह सुनकर तो शिवसागर सन्न रह गए थे। मृत्युद्वार पर खड़ी जननी को स्वयं दिखाने का समय भी नहीं है पुत्र को? मैंने अपने पी॰ए॰ से कह दिया है वह ग्यारह बजे तक आप लोगों को लेने आएगा, वही अम्मा के सब टेस्टस करवा देगा।''[4] ऐसा सुनकर तो पूरा महीना बेटे के पास रहने का निश्चय करके आई माँ उसी दिन अपने घर वापिस जाने का आग्रह करती है।

हमारे समाज में आज हर माता–पिता का यही हाल है। आज की युवा पीढ़ी अपने संस्कारों को भूलती जा रही है। उनके नैतिक मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं। जिन्होंने हमें जन्म दिया, पाल–पोसकर इतना बड़ा किया, उन्हें पढ़ा–लिखाकर इतना बड़ा आदमी बनाया। आज वही बच्चे अपने माता–पिता को भूल गए हैं। यह स्थिति दिन भर दिन और भी भयानक होती जा रही है। यहाँ तक कि बेटा व बहू अपने माता–पिता को वृद्धाश्रमों में छोड़कर आ जाते हैं और फिर कभी उनको संभालते भी नहीं।

आज का युवा विद्रोह की भावना को अपनाता जा रहा है उसे हर किसी से विद्रोह है। वह पथभ्रष्टी हो रहा है। सामाजिक नियम उसके लिए मिथ्या है। वह उनको तोड़ने में लगा है। हमारे नैतिक सिद्धान्त हमारी संस्कृति वह सभ्यता की नींव है और आज हम उस नैतिकता की भावना को नष्ट करते जा रहे हैं। नैतिक मूल्य व्यक्ति को एक मनुष्य बनाते हैं जिसके अन्दर भावना है, सहानुभूति है, दया, ममता है। अगर यही मनुष्य के अन्दर नहीं रहेगें तो फिर वह मनुष्य कहलाने के लायक भी नहीं रहेगा और वह समाज से कटता चला जाएगा।

संयुक्त परिवार से संबद्ध परंपरागत मूल्य–व्यवस्था में बड़ों का अधिकार और परम्परा की पवित्रता सर्वाधिक महत्वूपर्ण माने जाते है। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में संयुक्त परिवार का विघटन होने पर न तो बड़ों के अधिकार सुरक्षित रहे और न परंपरा ही सुरक्षित रही। पारिवारिक स्तर पर मूल्य संक्रमण की प्रक्रिया नगर–महानगर में जितनी तीव्र रही, पिछड़े गावों में उतनी तेज नहीं रही।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

फिर भी पारिवारिक व्यवस्था को हिला देने वाले परिवर्तन को स्पष्ट लक्ष्य किया जा सकता है। अर्थाभाव, नई रोशनी, पीढ़ियों का अंतराल आदि अनेक कारणों से माता–पिता को आज वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो कभी आचरण के प्रतिमानों में प्रमुख था। 'श्रवणकुमार' और 'राम' आदि के मिथक बहुत से युवकों को प्रभावित नहीं करते।

आज वह दौर है जब सूचना क्रांति ने सदियों पुराने भारतीय समाज के ढ़ाँचे को ही तहस नहस कर दिया है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद के प्रभुत्व के कारण मानवीय संबंधों के मान बदल गए हैं। जीवन की बुनियादी जरूरतों में तेजी से बदलाव आया है। आज पैसा ही सर्वोपरि हो गया है और हाड़ माँस से बना मनुष्य संवेदनशील हो गया है।

संयुक्त परिवार और संपति पर साझा हक व्यवस्था में दरार पड़ने के कारण बुजुर्गों की देखभाल करने वाला कोई नहीं है। निरंतर शहरों की ओर पलायन, नगरों में जगह की कमी वैकल्पिक व्यक्तिपरक सांस्कृतिक कायदों ने मिलकर परिवार द्वारा बुजुर्गों की देखभाल करने की प्रवृति को गहरा धक्का दिया है। संयुक्त परिवारों का विघटन, अकेलापन और भावनात्मक एवं शारीरिक सहारे की कमी जैसे कारक उनके सम्मानजनक तरीके से जीवन बिताने की मुश्किलों को बढ़ा रहे हैं।

भूमंडलीकरण और संचार क्रान्ति के बाद दुनिया काफी बदल गई है। हमारे समाज के विषय में विचार करें तो कह सकते हैं कि इस बदलाव का सर्वाधिक असर यहाँ रिश्तों पर ही पड़ा है। उस पर इतने आघात, इतने घाव हुए हैं कि उसके विगत चेहरे को पहचानना नामुमकिन हो चुका है। रिश्तों के मध्य की गरमजोशी, संवेदना, विश्वास, एका आदि के तार छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। हम कह सकते हैं कि रिश्तों का यह भरा पूरा संसार छूट रहा है। बिछड़ रहा है। जब कोई चीज हमसे दूर होती है तो भी हमें उसकी सर्वाधिक जरूरत होती है। हमारे नैतिक मूल्य इसी तरह हमसे दूर होते जा रहे हैं जिनकी हमें सर्वाधिक जरूरत है।

आज सभी परम्पराओं का बंधन झूठे लोकाचार और मर्यादा तले खिसकने लगे हैं। नैतिक मूल्य एवं सिद्धान्त भीतर ही भीतर चटखने लगे हैं। भौतिक सुविधाओं के प्रति बढ़ता आग्रह आंतरिक टूटन का यथार्थ है। समाज में बढ़ते अवरोधों और दोहरी मानसिकता के कारण नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। व्यक्तिगत लालसाओं की पूर्ति समाज विरोधी, मनोवृतियों का द्वार खोल देती है। कई कोणों से समाज अनैतिक हो रहा है। इसका कोई एक कारण नहीं है। अनैतिकता का सम्बन्ध नीतिशास्त्र है। अनैतिकता में व्यक्ति की आत्मा उसे धिक्कारती है। अनैतिकता व नैतिकता का अंतर अच्छाई व बुराई

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

के कारण किया जाता है और कभी–कभी ईश्वर के अस्तित्व के आधार पर भी इसकी पुष्टि की जाती है।

सामाजिक परिवर्तन के साथ मानवीय विचारधारा में भी परिवतर्तन नजर आया है और नैतिक धारणाएँ बदलने लगी हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व नैतिकता का आधार धर्म माना जाता था परन्तु जब धर्म में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा तो नैतिकता के परम्परागत मूल्य विश्रृंखलित हो गए और नए आयाम विकसित हुए। वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होगा कि हमारे समाज में परम्परागत नैतिक मूल्यों को अस्वीकार करने की प्रक्रिया अपनाई है। आधुनिक पीढ़ी तो जैसे प्राचीन नैतिकता के जुए से मुक्त होने की शपथ ले चुकी है। उसे न तो अपने माता–पिता की चिन्ता है और न ही अपने प्रति समाज की। वह समाज को अपने नजरिए से देखते हैं। इसी सन्दर्भ में 'ममता कालिया' के उपन्यास 'दुक्खम–सुक्खम' में वर्णन है कि लेखिका कवि – इन्दु की बेटी प्रतिभा के सन्दर्भ में ग्लैमर वर्ल्ड के प्रति युवा पीढ़ी के बढ़ते आकर्षण का आंकलन करती है। कविमोहन उसे आई॰ए॰एस॰ अफसर बनाना चाहता है। लेकिन वह है कि मॉडलिंग की जिद्द करे बैठी है। प्रतिभा बहती गंगा में हाथ धोना चाहती है लेकिन माता–पिता इसे 'शक्ल का धंधा' और छिछला कैरियर कहकर दुरदुरा रहे हैं। प्रतिभा ने कहा – ''पापा अगर नाटक में काम करना, नृत्य करना ठीक है तो मॉडलिंग में क्या बुराई है यह बताइए। इस शहर में कितने शो कर चुकी हूँ मैं, नाम के सिवाय कुछ भी न कमाया मैंने। कविमोहन ने कहा – और क्या कमाना है तुझे। क्या शक्ल दिखाकर पैसे कमाएगी। हमारे मुल्क में मॉडल को किस नजर से देखा जाता है तू नहीं जानती।[5]और आखिर में वह तबला मास्टर के साथ भाग गई। यही कहा जाता है कि आज के युवा अपने बारे में ही सोचते हैं। उनके एक गलत काम करने से उनके माता–पिता को समाज में क्या–क्या सुनना पड़ता है। इसकी उन्हें बिल्कुल खबर नहीं। इसलिए आज का युवा सिर्फ अपने बारे में सोचता है और किसी से उसे बिल्कुल भय नहीं।

इक्कीसवीं सदी की युवा पीढ़ी जिस प्रकार ज्ञानी व तकनीकवान होने का दंभ भर रही है। वह उसे समग्रता और मनुष्यता से दूर ले जाकर भरमा रही है। इस उपभोक्तावादी दौर में वृद्धों को मृत्यु का इतना भय नहीं है जितना अकेलापन उन्हें सता रहा है। इसी अकेलेपन के कारण वृद्ध मानसिक रोगों के शिकार हो रहे हैं। हम अपने चारों ओर अनेक दुखी लाचार एवं असहाय लोगों को देखते हैं। उनके पास धन संपति भी है। जवान बेटे–बेटियां और बहुएँ भी हैं। फिर भी अकेलापन झेलना उनकी विवशता होती जा रही है। दुक्खम–सुक्खम उपन्यास में कविमोहन अपनी पत्नी व बच्चों को साथ लेकर पूना चला गया और यहाँ उसके माता–पिता अकेले रहते क्योंकि उनकी छोटी बहन भगवती की भी शादी हो गई थी। यह तो होता ही है कि एक बार घर से बाहर रहने लगो तो बाद में वहाँ आकर कोई

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

खुश नहीं होता। नत्थीमल कहते, ''असल बात तो यह है कि छोरे को अपने घर से, अपने माँ–बाप से राई–रत्ती भी मोह नाँय। उसने कभी सोची बहनों के ब्याह हो गए। मेरे माँ बाप कैसे रहेंगे अकेले। नहीं वह तो सरकारी अफसर बनेगा कुर्सी तोड़ेगा।''[6] इस कथन के अन्दर एक पिता की पीड़ा छुपी हुई थी कि माता–पिता पाल पोसकर बच्चों को इतना बड़ा करते हैं और एक दिन वही बच्चे अपने मात–पिता को छोड़कर निकल जाते हैं।

आज मानवता ही सबसे बड़ा मूल्य है जिसका आज ह्रास हो चुका है। बढ़ती उपभोक्तावादी प्रवृति ने भी मनुष्य को अनैतिकता की ओर धकेलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। आज नैतिकता की अवधारणा में जबरदस्त परिवर्तन आया है। नैतिकता संबंधी सभी अवधारणाएँ अपना पारंपरिक अर्थ खो चुकी हैं। विभिन्न वर्गों के नैतिक प्रतिमान क्रूरतापूर्वक नष्ट होते जा रहे हैं। अगर ऐसे ही चलता रहा तो जो नैतिक मूल्य हमारी धरोहर हैं जिसे हम अपनी आने वाली पीढ़ी को सौंपते हैं वह एक दिन नष्ट हो जाएंगे। हमारी आज की युवा पीढ़ी नैतिक मूल्यों से अभावग्रस्त होती जा रही है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यहाँ पर समाज के उभरते हुए रूप को स्पष्ट किया गया है। अनैतिक पक्ष का विरोध किया है। आज सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के स्वार्थी रूप के कारण मनुष्य व्यक्ति स्वार्थों और आकांक्षाओं का पुतला बन गया है। हमारा जीवन ही जब दुराग्रह पर आधारित हो तो उसके लक्ष्य भी असत्य और छल–कपट पर आधारित होंगें। हमें दूसरों की पीड़ा को महसूस करना और जो चीज खुद के लिए बुरी है दूसरों के लिए भी बुरा समझना नैतिकता का एक महत्वपूर्ण अंग होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 सुशील सिद्धार्थ, हिन्दी कहानी का युवा परिदृश्य, पृ॰ 11
2 पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिन्दी उपन्यास, पृ॰ 220
3 चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृ॰ 137
4 शिवानी, पूतों वाली, पृ॰ 39
5 ममता कालिया, दुक्खम सुक्खम, पृ॰ 237
6 ममता कालिया, दुक्खम सुक्खम, पृ॰ 228